International Journal of Information Movement Vol.I Issue V (September 2016)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 52-57

भारत में शिक्षा की दशा एवं दिशा

कांता देवी
सहायक प्रवक्ता
बी.आर. कॉलेज ऑफ एजूकेषन, कुरुक्षेत्र

सार :

शिक्षा का अस्तित्व अति प्राचीन काल से चला आ रहा है, परंतु समय के साथ साथ शिक्षा के स्वरुप और ढांचे में भी परिवर्तन हुआ है। शिक्षा एक गतिशील सामाजिक प्रक्रिया है। समाज के परिवर्तन के अनुरुप ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। पहले शिक्षा प्रकिया के सर्वोच्च शिखर पर शिक्षक हुआ करता था। बालक की रुचि, अभिवृति, अभिव्यक्ति, क्षमता, आवश्यकता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, परंतु शिक्षा का स्वरुप अब बदल चुका है शिक्षा अब बालकेंद्रित हो गई है एवं शिक्षक का स्थान द्वितीय होने पर भी उसकी जिम्मेदारियां और बढ़ गई हैं। हम जानते है कि शिक्षा का अस्तित्व अति प्राचीन काल से चला आ रहा है और जैसे–जैसे शिक्षा का विकास होता गया इसके विकास में एक महत्वपूर्ण तत्व संस्कृति का भी प्रभाव हमेशा से रहा है। संस्कृतियों के अनुसार ही शिक्षा का निर्धारण एवं निमार्ण भी हुआ है। अतः शिक्षा में संस्कृति तत्व का विशेष महत्व रहता है। आज निरंतर प्रगति के फलस्वरुप देखते हैं, कि शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक रुप से कई बाते सामने उजागर हुई हैं।

शिक्षा के निर्धारण एवं निर्माण में संस्कृति का महत्वपूर्ण हाथ होता है तथा आधुनिक शिक्षा मे भी संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है। इस संस्कृति के प्रभाव में आर्य, शक्, हूण, पवन, तुर्क, पठान, मुगल, अरब आदि ने अपनी संस्कृति के आधार पर जल मिलाये, परन्तु शिक्षा भागीरथी गंगा की भांति अविछिन्न गति से चलती रही और निखरती रही। आधुनिक काल में शिक्षा पर पाश्चात्य सभ्यता का व्यापक प्रभाव पड़ा एवं अंग्रेजी शिक्षा को आत्मसात करने का प्रयत्न प्रारंभ हुआ।

1.0 उद्देश्य :

1. समाज को शिक्षा की दशा एवं दिशा से अवगत कराना।
2. शिक्षा की दशा में हो रहे प्रभावो का अध्ययन करना।

1.1 परिकल्पना :

1. भारत में प्राचीन काल से शिक्षा की दशा एवं दिशा में निरंतर परिवर्तन होता रहा है।
2. शिक्षा जहा एक ओर तेजी से विकसित हुई है और उसकी व्यापकता में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर उसकी दशा में ह्रास हो रहा है।

1.2 अध्यापन की आवश्यकता एवं महत्व :

अरस्तु ने ठीक ही कहा है कि ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, शिक्षा के अभाव में मानव जीवन की कल्पना करना असंभव है। सृष्टि से लेकर अब तक शिक्षा का प्रभाव एवं आस्तित्व भली प्रकार

स्वीकार किया जा रहा है। जब तक संसार में मानव का आस्तित्व बना रहेगा तब तक शिक्षा की प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी।''

प्राचीन भारतीय मनीषियों के अनुसार – ''सविद्या या विभुक्तये'', अर्थात् विद्या वह है, जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त करती है।[1]

महात्मा गांधी के अनुसार : ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ठ रुपों को प्रस्फुटित कर दें।''

शिक्षा केवल वही नहीं, जो मनुष्य को स्कूल में मिलती है, बल्कि शिक्षा का कार्यअम जीवन भर चलता रहता है मनुष्य अपने विभिन्न अनुभवों से अपने जीवन भर कुछ न कुछ सीखता है। वह हर किसी परिस्थिति और हर किसी मनुष्य से कुछ न कुछ सीखता है। शिक्षा का अर्थ पहले ज्ञान को बालक के मस्तिष्क में भरने से लगाया जाता है, लेकिन अब ऐसा नही है आज शिक्षा का अर्थ बालक की जन्म जात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करके उसके जीवन को सफल बनाने से है। अब यह नही माना जाता कि शिक्षा प्रक्रिया में केवल अध्यापक ही सअिय रहे और बालक के दिमाग में ज्ञान भर दे। अब शिक्षा प्रक्रिया में बालक निष्क्रिय नहीं रहता है। शिक्षक और छात्र दोनों ही शिक्षा प्रक्रिया में सक्रिय बने रहते है। शिक्षा स्थिर नहीं है, यह एक गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा और समाज साथ–साथ चलते है, जब–जब समाज में परिवर्तन होता है। तब–तब शिक्षा में परिवर्तन होता है।[2]

2.0 कला क्षेत्र एवं साहित्य का अध्ययन :

पाश्चात्य संदर्भ में शिक्षा : पाश्चात्य जगत में मानव सभ्यता रूपी सूर्य की प्रथम किरण मिस्त्र में दिखाई पड़ी। आज से लगभग पाँच छः हजार वर्ष पूर्व मिस्त्र में सभ्यता का उदय हुआ था। मिस्त्र में सार्वजनिक शिक्षा तो थी नही किन्तु राजा, पुजारी, एवं उच्च शासकीय कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबंध था। मिस्त्र में ही सर्वप्रथम लिखने का अविष्कार हुआ और वहाँ के पुजारियों ने 'हाइरोग्लिफ्स' नामक लिपि का अविष्कार किया। नील नदी के आस–पास मिस्त्र की सभ्यता का उदय हुआ था। बैबीलीन में ही संभवतः प्रथम विद्यालय खुले थे। बैबीलोन के कातिब बड़े प्रसिद्ध थे और छात्र को परिवार का सदस्य बनाकर शिक्षा देते थे। यहूदियों ने तो अपने धर्म की रक्षा के लिए विद्यालयों को सर्वोत्तम साधन माना। यूनानी शिक्षा का स्थान पाश्चात्य शिक्षा के इतिहास की दृष्टि सें बड़ा महत्व है, इसमें शारीरिक एवं नैतिक शिक्षा का प्रमुख स्थान था स्त्री शिक्षा पर भी अध्ययन दिया जाता था। बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में विशेष अन्तर नही था, नागरिकता की शिक्षा पर बल था।

2.1 प्राचीन काल में शिक्षा : भारत में शिक्षा का प्रारंभ प्राचीन काल में परिवारिक परिधि में अलग आश्रम एवं गुरूकुल में व्यस्थित रूप से प्रारंभ हो गया था। वैदिक काल में उपनयन संस्कार संपन्न कराकर बालकों को विद्या आरंभ कराने हेतु शिक्षकों के रूप में गुरूओं के आश्रमों में भेज दिया जाता था। आगें चलकर ब्राकृण काल में आश्रमों को गुरूकुल के रूप में जाना गया और यही प्राथमिक शिक्षा लिखने, पढ़ने, गणित एवं शास्त्रों का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के रूप में जानी गयी। प्राथमिक शिक्षा

प्राचीन भारत में निःशुल्क थी, किन्तु गुरू शिष्य समबन्ध अध्यात्मिक रूप से मानस पिता पुत्र के रूप में थे। गुरूओं की महत्ता एवं सम्मान के संबंध में संस्कृत साहित्य में लिखा गया है। –

''गुर्रु ब्रम्हा गुर्रू विष्णु गुर्रू देवों महेृयवरः।
गुरुः साक्षात् परब्रम्ह तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

प्राचीन भारत में शिक्षा की सर्वमान्य संस्था आश्रम, गुरूकुल, अग्रहार, मठ, संध और विहार थे। गुरूकुल प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा के केन्द्र थे संध एवं विहार उच्च शिक्षा के केन्द्र माने गये। प्राचीन भारत में शिक्षा उच्च स्तर की थी, तक्षशिला में आचार्य पाणिनी, कौटिल्य जैसे विश्व विख्यात शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक भी थे। जीवक बौद्धकाल में बैद्यराज तक्षशिला के विद्यार्थी रहे थे। यहाँ वेद वेदांग के साथ–2 आयुर्वेद, धनुर्वेद, इन्द्रजाल, युद्धविज्ञान, हस्तिसूत्र, ज्योतिष, वाणिज्य, कृषि, नृत्य, संगीत, चित्रकला, शल्य एवं चिकित्सा गुप्तकोषज्ञान, मृगया, अंगविद्या, पशुपक्षी की बोली एवं व्यवहार को समझना आदि प्रमुख विषयों की शिक्षा दी जाती थी।[3]

2.2 बौद्धकाल में शिक्षा : महात्मा गौतम बुद्ध के जन्म के बाद से ही बौद्ध शिक्षा का ड्डाुभारम्भ हो गया था। बौद्धकाल में प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र मठ थे, मठ शिक्षा के साथ–2 धर्म के केन्द्र भी थे। डॉ॰ राधा कमल मुखर्जी के शब्दों में ''बौद्ध मठ शिक्षा एवं ज्ञान के केन्द्र थे, बौद्ध संसार अपने मठों में स्वतंत्र रूप से शिक्षा प्रदान करने का कोई अवसर नही देता था, धार्मिक एवं लौकिक सभी प्रकार की शिक्षा भिक्षुओं के हाथ में थी'' 6 वर्ष की आयु के पश्चात् प्रवज्या संस्कार के समय भारणत्रयी की शपथ ग्रहण करनी पडती थी –

वुद्धम् भारणम् गच्छामि!
धर्मम् भारणम् गच्छामि।
संधं भारणम् गच्छामि।।

इसके बाद प्रथम 6 मास में सिद्धि रस्तु नामक बाल पोथी पढ़नी पड़ती थी इस पोथी में 12 अध्याय और वर्ण माला के 49 अक्षर थे। इन अक्षरों को विभिन्न प्रकार से अमबद्ध करके 300 से अधिक श्लोक बनाये गये थे। 16 माह के बाद छात्रों को शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, तर्क विद्या आध्यात्म विद्या एवं शिल्प विद्या की शिक्षा दी जाती थी, इस प्रकार बौद्धकाल की शिक्षा लौकिक एवं पारलौकिक थी। बौद्ध साहित्य में नालन्दा, वल्लभी, मिथिला, विअमशिला, ओदन्तपुरी आदि ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालय थे।[4]

2.3 मध्यकाल में शिक्षा : भारत में संपूर्ण मुस्लिम शिक्षा विदेशी प्रणाली पर आधारित थी। डा. एफ. ई. के. ई के शब्दों में ''मुस्लिम शिक्षा विदेशी शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी, भारत में इसका प्रतिरोपण, बाह्मणीय शिक्षा से आया था, भारत की नवीन भूमि में इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली को विकसित करने का प्रयास मुस्लिम शासकों तथा मौलवियों द्वारा किया गया।[5]

मुस्लिम शासकों ने इस्लाम धर्म के अनुसार यहा मकतबों तथा मदरसों में शिक्षा की व्यवस्था की। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर मुहम्मद साहब कहते थे कि ''दान में सोना देने की अपेक्षा एक बच्चे को शिक्षा देना अधिक अच्छा है।''[6] किन्तु, मुस्लिम शासकों ने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, बल्कि

उनका मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना तथा मुस्लिम संस्कृति का प्रसार करना था। मध्यकाल में प्राथमिक शिक्षा के मुख्य केन्द्र मकतब थे। इनमें प्रवेश से पूर्व बिसमिल्लाह संस्कार भी संपन्न कराया जाता था। शिक्षा के इन केन्द्रों का संचालन मुल्ला और मौलवियों के हाथों में थे। मकतबों के पाठ्यक्रम में बालकों को पढ़नें लिखने और साधारण अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद कुरान की आयतों को भी कंठस्थ कराया जाता था। व्यवहारिक शिक्षा के अन्तर्गत बातचीत करने का ढंग, सुन्दर लेखन, पत्र लेखन और अर्जीनबीसी सिखाई जाती थी। चारित्रिक एवं नैतिक विकास के लिए शेखसादी की प्रसिद्ध पुस्तकों बोस्तां एवं गुलिस्तां पढ़ाई जाती थी। कठोर अनुशासन के लिए कठोर दण्ड एवं छात्र को शारीरिक यंत्रणा भी दी जाती थी। इस प्रकार मध्यकाल में शिक्षा मुस्लिम शासन की नींव को मजबूत करने के लिए एवं शरीयत का प्रचार प्रसार के लिए थी।

2.4 ब्रिटिश काल मे भारतीय शिक्षा : सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंम्भ से ही भारत के यूरोपीय व्यापारिक के कम्पनियॉ प्रवेश करने लगी, जिन्होंने मिशनरियों के द्वारा भारत में शिक्षा व्यवस्था का श्री गणेश किया। इस युग में प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ सामान्य उच्च शिक्षा का प्रादुर्भाव हमारे देश मे हुआ तथा शिक्षा विभाग की स्थापना की गई और भारत मे आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तक होने का गौरव भी प्राप्त किया। अंग्रेज मिशनरी कम्पनी के कर्मचारियों कोनःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे। चार्ल्स ग्राण्ट ने लिखा था ''हिन्दू इसलिए गलती करते हैं, क्योकि उनमे अज्ञानता है। और उनको अपनी कमिया कभी बताई नही जाती है।''

1910 में गोपाल कृष्ण गोखले के प्राथमिक शिक्षा के लिए अनिवार्यता प्रदान करने के साथ–साथ निःशुल्क बनाने का प्रयास भी किया। गांधी जी ने भी 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा हेतु बुनियादी शिक्षा वर्धा शिक्षा योजना के माध्यम से देश के समक्ष रखा। इस संबंध में सार्जेण्ट रिर्पोट मे भी महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन फिर भी भारत मे शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही।[7]

2.5 बुनियादी शिक्षा :

राष्ट्र के रूप में हम शिक्षा के क्षेत्र में इतने पिछड़े हुए हैं कि यदि शिक्षा का यह कार्यक्रम हमने धन पर आधारित किया, तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्व को इस पीढ़ी मे थोड़े समय में निर्वाह की आशा नहीं कर सकते। अतः मैं बालक की शिक्षा का आरंभ उसे एक उपयोगी हस्त कला सिखाकर करना चाहता हूँ।[8] महात्मा गांधीजी ने, शिक्षा के महत्व को बताते हुए कहा था कि ''जब तक देश में व्यापक रूप से शिक्षा का प्रसार नही होगा, तब तक न तो देश सच्चे अर्थो में स्वतंत्र हो सकेगा और न ही उसकी बहुमुखी प्रगति हो सकेगी।'' वे तत्कालीन शिक्षा को भी दोषपूर्ण मानते थे। उनके विचार में आधुनिक शिक्षा भारतीय वातावरण के पूर्णतया प्रतिकूल है और इतनी व्यय पूर्ण है कि सामान्य नागरिक इससे लाभ नहीं उठा सकता। उन्होंने हरिजन पत्र मे एक स्थल पर बड़े दुख के साथ लिखा था – ''मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली दोषपूर्ण ही नही हानिकारक भी है। अधिकांश

बालक अपने माता–पिता तथा पैतृक व्यवसाय का त्याग कर देते हैं, वे जो कुछ सीखते हैं उसे शिक्षा के अतिरिक्त कुछ भी कह सकते हैं।''

रायवर्न के अनुसार –''यह शिक्षा क्रिया प्रधान है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण ज्ञान का आधार अनुभव माना जाता है। बालक हस्त शिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहते हुए मानसिक अनुभवों के साथ–2 अन्य प्रकार के अनुभव की प्राप्त करता है।''[9]

2.6 स्वतंत्र भारत मे शिक्षा : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा को समवर्ती सूची मे सम्मिलित कर लिया गया। 16 से 14 वर्ष के बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था की गई तथा नाम मात्र का शुल्क रखा गया। प्रथम से 8 वी पंचवर्षीय योजना तक धन की व्यवस्था केन्द्रीय स्तर पर की गई। प्रारम्भ में जिला परिषद एवं नगर पालिकाओं तथा महानगर पालिकाओं में बेसिक शिक्षा विभाग बना कर विद्यालय स्थापित किए गए तथा अध्याापकों कि नियुक्तियां की गई बाद मे आगे चलकर प्रांतीय सरकारों ने प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था अपने हाथों में ली, लेकिन वर्तमान में प्रदेश के शासन के अंतर्गत व्यवस्था की गई। माध्यमिक शिक्षा के अंतर्गत स्त्री शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। पाठ्यक्रम मे वैज्ञानिक तकनीकी और व्यावसायिक विषयों का समावेश किया गया। 1947 तक भारत मे 4000 के करीब माध्यमिक विधालय थे, जो 1982–83 तक 52279 हो गये थे और छात्रों कि संख्या 7 लाख से बढ़कर 1 करोड़ 40 लाख एवं अध्यापक 9300 से बढ़ कर 993000 हो गई थी। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद माध्यमिक शिक्षा के लिए ताराचन्द्र समिति 1948 मे विश्व विद्यालय आयोग 1948, माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53 तथा शिक्षा आयोग 1964–1966 का गठन किया गया, जिसमे बेहतर माध्यमिक शिक्षा पर जोर दिया गया और इन आयोगों का शिक्षा पर विस्तृत प्रभाव पड़ा था। डा एस. एन मुखर्जी के शब्दों में – हाल के वर्षो मे माध्यमिक शिक्षा मण्डल की शिक्षा की धारणा में परिवर्तन हो गया है। यह मुख्यतः माध्यमिक शिक्षा आयोग के कारण हुआ है। नई शिक्षा नीति 1986 में इस बात पर बल दिया गया कि माध्यमिक शिक्षा की सुलभता को विस्तृत किया जाएगा, ताकि वर्तमान समय में जिन क्षेत्रों को शामिल नहीं किया है, उन्हें शामिल किया जा सके।

1948 मे गठित डा. राधा कृष्णन की अध्यक्षता में विश्व विद्यालय में आयोग मे उच्च शिक्षा की प्रगति के लिये विभिन्न दृष्टिकोण मे से विचार किया। 1964 मे डॉ. डी. एस. कोठारी ने अध्यापकों के वेतन पाठ्यक्रम आदि पर सिफारिशें प्रस्तुत की। 1986 की नई शिक्षा नीति ने गुणात्मक सुधार लाने के उद्देश्य से मुक्त एवं खुला विश्वविद्यालयों कि स्थापना उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश परिक्षायें अनुसंधान कार्यक्रमों को प्रोत्साहन शिक्षकों की जबाबदेही कुछ महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के चुने हुये विभागों को स्वायत्ता प्रदान करने की सिफारिशें की गई। इस प्रकार महाविद्यालयों एवं 10 विश्वविद्यालयों की संस्था में बेतहाशा वृद्धि हुई।

3.0 निष्कर्ष :

शिक्षा व्यवस्था प्राचीन काल से आधुनिक काल तक निरंतर परिभाषित होती रही है। भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है, किन्तु अनियोजित संख्या मे वृद्धि ने समस्याएँ

पैदा कर दी हैं। बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। शिक्षा के निजीकरण के कारण लूट खसोट एवं भ्रष्टाचार को बल मिला है, शिक्षा की गुणवत्ता मे ह्रास हुआ है। अनुशासन द्वारा नकल प्रवृत्ति बढ़ी है एवं जीवन मूल्यों मे गिरावट आई है। शिक्षा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक निरंतर अपना स्वरूप बदलती रही है। जिससे समाज के अनुकूल सर्वव्यापकता आई है और शिक्षा लगभग जन–जन में व्याप्त हो गई है। शिक्षा समय के अनुकूल और समाज की आवश्यकतानुसार निरंतर परिवर्तित हुई है, किंतु आज भी शिक्षा के वास्तिविक स्थिति तथा दशा एवं दिशा में बदलाव नहीं किया जा सका है, जिससे सर्वांगीण विकास संभव हो सके।

4.0 संदर्भ :

1 पटेल सच्चिदानन्द, शोधार्थी संयुक्त शोध प्रबंध एम. ए. शक्षा, महात्मा गांधी की चित्रकूट ग्रामोदय विद्यालय चित्रकूट, पृष्ठ 4, सत्र 2007–2008.

2 पाण्डेय डॉ. राम शक0, ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'', पृष्ठ अ. 3,11,38,39 पंचम संशोधित संस्करण–2011.

3 मिश्र डा. आर. एन., शिक्षा में प्रयोग तथा समस्याए, पृष्ठ अ. 2,45, चतुर्थ संस्करण 2013–14.

4 मिश्र डा. आर. एन., शिक्षा में प्रयोगथा समस्याए, पृष्ठ अ. 2,3, चतुर्थ संस्करण 2013–14.

5 मिश्र डा. आर. एन., शिक्षा में प्रयोग तथा समस्याए, पृष्ठ अ. 3, चतुर्थ संस्करण013–14.

6 सिंह रामपाल, शर्मा रमेशचन्द्र, सेवसी अशोक, सिंहागेन्द्र भारत में शिक्षा प्रणाली और विद्यालय प्रबंध, पृष्ठ 254, प्रथम संस्करण 2012–13.

7 मिश्र डा. आर. एन., शिक्षा में प्रयोग तथा समस्याएँ, पृष्ठ 5, चतुर्थ संस्करण 2013–14.

8 भारद्वाज आर. के. ''शिक्षा के आधार'', पृष्ठ 168, द्वितीय संस्करण 2013–14.

9 वही, पृष्ठ 175.

10 मुकर्जी डा. एस. एन., एजुकेशन इन इंडिया टुडेमारो, पृष्ठ 124.